महादेवी के गद्य साहित्य में शैक्षिक निहितार्थ एवं उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता

*सन्त कुमारी गोगना**

साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों ही युग-निर्माता होते हैं। साहित्यकार अपनी लेखनी से आदर्श समाज के नवनिर्माण में योगदान देता है, तो शिक्षक अपने शिक्षण दायित्व के निर्वाह द्वारा कुंभकार की भाँति भावी पीढ़ी को गढ़ता है। महादेवी जी ने अपने जीवन में साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों रूपों में अपने दायित्व का सफल निर्वाह किया। भारतीय संस्कृति की उपासिका महादेवी जी बालकों में पूर्णरूपेण भारतीयता का रंग भरने के लिए लालायित रहीं, यही कारण था कि वे प्राचीन शैक्षिक आदर्शों की पुनर्स्थापना की आकाँक्षा को मूर्तिमान करने के लिए प्रयत्नशील रहीं।

साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ साहित्यकार की भावानुभूति का प्रकाशन भी होता है। छायावादी काव्य के सुदृढ़ आधारस्तंभ के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त महादेवी जी कवयित्री के साथ-साथ संवेनदशील लेखिका भी थीं। इसके अतिरिक्त प्राचार्या एवं शिक्षिका पद को गौरवान्वित करने के कारण शिक्षा जगत से उनका घनिष्ठ संपर्क एवं लगाव था। साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों ही युग-निर्माता होते हैं। साहित्यकार अपनी लेखनी से आदर्श समाज के नव-निर्माण में योगदान देता है, तो शिक्षक अपने दायित्व के निर्वाह द्वारा कुंभकार की भाँति भावी पीढ़ी को गढ़ता है। महादेवी जी ने अपने जीवन में साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों रूपों में अपने दायित्व का सफल निर्वाह किया था।

महादेवी जी द्वारा दिए गए दीक्षांत भाषणों, (मेरे प्रिय संभाषण में संकलित) शृंखला की कड़ियाँ एवं संस्मरणों में स्थान-स्थान पर उनके शिक्षा संबंधी उद्‌गारों का प्रकाशन इसका साक्षी है कि ब्रह्मचर्याश्रम एवं गुरुकुल प्रणाली में उन्हें गहरी आस्था एवं विश्वास था।

*रीडर, शिक्षा संकाय, डी.ई.आई., दयालबाग, आगरा उ.प्र.

हमारे प्राचीन भारतीय मनीषियों ने जीवन को व्यवस्थित करने के लिए उसे चार आश्रमों में वर्गीकृत किया था। हिंदू नीतिशास्त्र के अनुसार जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है तथा इस जीवन की महायात्रा में आश्रम पड़ाव के समान है। ब्रह्मचर्याश्रम में उपनयन संस्कार के साथ प्रवेश कर ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) 25 वर्ष की अवस्था तक गुरु के संरक्षण में रहकर वेदाध्ययन करता हुआ आत्म संयम का जीवन व्यतीत करता था। आधुनिक समय में यही अवस्था विद्यार्थी जीवन है।

शिक्षा के विभिन्न पक्षों यथा शिक्षा की संकल्पना एवं दायित्व, विद्यार्थी-जीवन, शिक्षक-शिष्य संबंध, गुरु-दक्षिणा, शिक्षा संस्कार संबंधी उद्‌गारों की विस्तृत अभिव्यक्ति उनके गद्य-साहित्य में उपलब्ध है । शिक्षकों को प्राचीन शिक्षा पद्धति के आदर्श की पुनर्स्थापना हेतु उद्‌बोधित करते हुए, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उसकी सार्थकता पर उनके सटीक विचार निम्नांकित शीर्षकों में प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

शिक्षा का अर्थ

महादेवी जी ब्रह्मचर्याश्रम के समान आज भी शिक्षा को भावी जीवन की तैयारी व मोक्ष प्राप्ति का साधन स्वीकार करती हैं - "शिक्षा अपने सीमित अर्थ में जीवन के लिए तैयारी मानी जा सकती है। परंतु व्यापक अर्थ में वह जीवन का चरम उद्देश्य ही रहेगी।" (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 26)

इस प्रकार शिक्षा की उनकी अवधारणा सीमित अर्थ में भौतिकता एवं व्यापक अर्थ में आध्यात्मिकता का अपूर्व सम्मिश्रण है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इनमें से कोई भी पक्ष उपेक्षणीय नहीं, अपितु विकास की दौड़ में दोनों का संतुलन महत्वपूर्ण है।

शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्यों को उन्होंने दायित्व के रूप में प्रतिपादित किया है। महादेवी जी ने अपनी कृतियों में शिक्षा के जिन तीन प्रमुख दायित्वों का प्रतिपादन किया है, वे हैं - भावी जीवन की तैयारी, पशुवृत्तियों का संयमन और प्रतिभाओं का सृजन।

शिक्षा की सैद्धांतिकता की अनुपयोगिता से वे अपरिचित नहीं थी। जीवन में स्वावलंबन हेतु शिक्षा की सार्थकता जीविकोपार्जन में निहित है । इस विचार की पुष्टि उनके इस कथन से होती है- "कुछ व्यावहारिक एवं उत्पादक शिक्षा भी मिल सके और जो कुछ सिखाया जाए, उसका संबंध बालक की रुचि के अनुकूल शिल्पकला से हो" (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 17)।

शिक्षा ही मनुष्य को पशु से श्रेष्ठ सिद्ध करती है। शिक्षा विहीन मानव पशु समान है। शिक्षा उसकी पशुवृत्तियों (मूल प्रवत्तियों का मार्गन्तरीकरण कर उसे संयम के पथ पर अग्रसारित करती है। इस संदर्भ में उनका यह कथन दृष्टव्य है - ''शिक्षा के क्षेत्र में समस्त अनगढ़ पशुवृत्तियों को संयमित तथा मानवीय संभावनाओं को साकार बनाने का कठिन कार्य होता है'' (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 12)।

महादेवी जी के इस विचार से हम सभी सहमत होंगे कि शिक्षा की समृद्ध परंपरा वैज्ञानिक, दार्शनिक, समाज-सुधारक, अर्थशास्त्री, व्यापारी, नेताओं आदि का सृजन कर राष्ट्रीय विकास में अपना बहुमूल्य योगदान देती है। प्राचीन काल में

भी विभिन्न क्षेत्रों में नवीन प्रतिभाएँ भेजने का कार्य शिक्षा को सौंपा गया था । महादेवी जी के अनुसार "शिक्षा शिक्षा क्षेत्र, समाज, शासन, कला, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में नवीन प्रतिभाएँ भेजती थी" (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 12)।

आज भी शिक्षा का यही महान दायित्व है कि वह मानव को परिष्कृत कर राष्ट्र विकास में सहायक बनाए। शिक्षा यह कार्य व्यक्ति की जन्मजात योग्यता के प्रगतिशील विकास द्वारा संपादित करती है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

महादेवी जी ने पाठ्यक्रम में व्यावहारिक विषयों की महत्ता एवं व्यापकता पर भी बल दिया। स्वरुचि के अनुसार बालक को शिल्प आधारित विषयों के चयन की स्वतंत्रता उसके स्वाभाविक विकास को प्रोत्साहन देना, महादेवी जी के अनुसार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। शिक्षा एवं अभिव्यक्ति का माध्यम महोदेवी जी ने मातृभाषा को ही स्वीकार किया है- "मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना तो सबसे पहली बात होगी।" (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 18) इस प्रकार वे मातृभाषा की शिक्षा को अति आवश्यक मानती हैं।

शिक्षण विधि

पाठ्यक्रम को बालक के मस्तिष्क का अंग बनाने के लिए किसी न किसी शिक्षण विधि का आश्रय लेना ही होता है। महादेवी जी स्वयं ग्रामीण बालकों को वृक्ष की छाया में, वार्तालाप विधि से शिक्षा प्रदान करती थीं। इस ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा है - "मेरे विद्यार्थी, पीपल के पेड़ की घनी छाया में मेरे चारों ओर एकत्रित हो गये, मैंने उन्हें वार्तालाप द्वारा शिक्षा देने का बीड़ा उठाया" (अतीत के चलचित्र, पृ. 59)।

महादेवी जी के अनुसार बालक को वास्तविक जीवन के अनुभवों द्वारा व्यावहारिक ज्ञान दिया जाना चाहिए क्योंकि बालक जितना क्रिया द्वारा सीखता है उतना सैद्धांतिक विधि द्वारा नहीं । इसी तथ्य को प्रकाशित करता उनका ये कथन दृष्टव्य है - ''शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान प्रदान करने की व्यावहारिक विधि को अपनाना चाहिए । विद्यार्थी की आयु के अनुसार व्यावहारिक पक्ष और ज्ञान प्रदान करने के लिए सैद्धांतिक पक्ष को अपनाना चाहिए (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 12)।

वैदिककालीन एवं आधुनिक शिक्षा में छात्रानुशासन

प्राचीन गुरुकुल पद्धति में ब्रह्मचारी को ज्ञानार्जन हेतु विशिष्ट जीवन शैली का पालन करते हुए पात्रता विकसित करनी पड़ती थी। विद्यार्थी का आत्मसंयमी, क्षमाशील, विनयी, कर्त्तव्यपरायण एवं सच्चरित्र होना अनिवार्य था। उस समय आत्मसंयम अनुशासन का पर्याय था। आत्मसंयम की पृष्ठभूमि में निहित कारणों का अनुमान लगाते हुए महादेवी जी ने संकेत दिया है - "ब्रह्मचारी का चित्र में भी स्त्रीदर्शन वर्ज्य था। भारत एक वैराग्यप्रधान, संयमप्रधान देश है। अतः दुर्बल पुरुष को इस आदर्श तक पहुँचने के बीच जितनी ऊँची प्राचीर बना सकना संभव था, बना दी गई" (शृंखला की कड़ियाँ, पृ. 123)।

अनुशासनहीनता का उद्‌भव

आज के परिवेश में परिवार में बालकों को अनुशासित

व संयमी रखने का प्रयास किया जाता है। किंतु परिवार की लक्ष्मण रेखा पार करते ही वे अनियंत्रित हो जाते हैं। इस व्यवहार का कारण महादेवी जी के ही शब्दों में - "गृह के वातावरण से निकलकर जब युवक-युवतियाँ एक दूसरे को कुछ निकट से देखने की सुविधा पाते हैं तब वे एक दूसरे को स्वर्गीय वस्तु समझकर परस्पर जानने के कौतूहल में उस निर्धारण रेखा का उल्लंघन कर जाते हैं" (शृंखला की कड़ियाँ, पृ. 123)।

इसके मूल में महादेवी जी ने आदि के अंत तक नैतिक शिक्षा का अभाव बताया है - "आदि से अंत तक प्रायः बालकों को नैतिक शिक्षा नहीं मिलती" (शृंखला की कड़ियाँ, पृ. 123)।

निस्संदेह नैतिक शिक्षा ही विद्यार्थियों में संयम का विकास कर विद्यार्थियों को उचित सद्गुणों और पात्रता से संपन्न कर सकती है। आज छात्र वर्ग मूल्यविहीन एवं दिशाविहीन हो रहा है, जिस कारण शिक्षा जगत में छात्रानुशासनहीनता के व्याप्त होने की ओर संकेत करते हुए महादेवी जी स्वीकार करती हैं - "छात्र आंदोलन का कारण शिक्षा के उपरांत जीविकोपार्जन का कोई साधन प्राप्त नहीं होना है। राजनीतिक दलों की प्रेरणा छात्रों के असन्तोष के मूल में है" (मेरे प्रिय सम्भाषण, पृ. 16)।

यदि विद्यार्थी की प्रतिभा और उसके कृतित्व को उसकी रुचि के अनुसार दिशा और लक्ष्य प्राप्त हो सके तो वह राजनीति में सक्रिय भाग लेने को आवश्यक नहीं मानेगा। राजनैतिक दलों को चाहिए कि वे छात्र वर्ग के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करें ताकि छात्र वर्ग उनसे निर्देशित होकर अपने जीवन को उसी आदर्श के अनुरूप ढाल सकें।

इस प्रकार महादेवी जी ने प्रभावात्मक अनुशासन का समर्थन किया। इसके अतिरिक्त अनुशासनहीनता के अन्य मूल कारण को स्पष्ट करते हुए महादेवी जी कहती हैं - "शिक्षा के संबंध में हमारी नीति अनिश्चित है, जिसके कारण हमारे विद्यार्थी अनुशासनहीन हैं" (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 33)।

स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा नीति अस्पष्ट, अस्थिर एवं अनिश्चित है जिस कारण बालक दिग्भ्रमित हो रहा है। उसे भविष्य का मार्ग स्पष्ट दिखाई नहीं देता, जिससे असंतोष उत्पन्न होता है। यही असंतोष अनुशासनहीनता को जन्म देता है।

गुरु-शिष्य संबंध

वैदिक युग में शिक्षक-शिष्य संबंध अत्यंत पवित्र, गौरवमय व मधुर थे। आचार्य ब्रह्मचारी के प्रति अगाध स्नेह रखते हुए उनको सब प्रकार से योग्य बनाने का प्रयत्न करते थे। वे ब्रह्मचारी (शिष्य) भी अपने आचार्य की सेवा करना, उनके आदेशों का पालन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे।

महादेवी जी ने उसी गुरु-शिष्य संबंध को आदर्श रूप में स्वीकार किया तथा अपने अध्यापन काल में उसी प्राचीन आदर्श का अनुसरण कर समाज का मार्गदर्शन करने का प्रयास किया। महादेवी जी अपनी छात्राओं के स्वास्थ्य, सुख-सुविधाओं के प्रति सदैव चिंतित रहती थी, उन्हें तनिक भी कष्ट होने पर व्याकुल हो जाती थीं यथा छात्रावास की एक छात्रा की चिंता में खिन्न हो स्वयं को ही दोष देती हैं - "जब मेरा शरीर इतना निकम्मा था कि इनके सुख-दुख में दो रात जागना भी सहज नहीं, तब किस बूते पर मैंने इन बालिकाओं को उनकी माताओं से इतनी

दूर ला रखा है। ऐसे दम्म को अक्षय अपराध की कोटि में स्थान मिलना चाहिए" (अतीत के चलचित्र, पृ. 75)।

यदि आज सभी शिक्षक अपने विद्यार्थियों को ऐसा स्नेह दें तो विद्यार्थियों में अपने गुरु के प्रति द्धा पुनः जागृत हो सकती है ।

एक ओर यदि गुरु, विद्यार्थी के प्रति स्नेह रखता था तो दूसरी ओर शिष्य भी गुरु के प्रति श्रृद्धा व भक्तिभाव रखता था। ब्रह्मचारी (शिष्य) आज्ञाकारी कर्त्तव्यपरायण होता था। यही भाव महादेवी जी ने अपने शिष्यों में भी पाया। गंगा पर झूसी ग्राम के अपने एक शिष्य "धीसा" की गुरुभक्ति उन्हें वेदकालीन गुरुभक्ति से होड़ लेती-सी प्रतीत होती है। महादेवी जी द्वारा स्वच्छ कपड़े पहनने की आज्ञा देने पर "धीसा नहाकर गीला अंगोछ लपेटे और आधा कुरता पहने अपराधी के समान मेरे सामने आ खडा हुआ, तब मेरा रोम-रोम गीला हो उठा।" (अतीत के चलचित्र, पृष्ठ 70)

लेकिन आज शिक्षक एवं शिष्य के मध्य संवेदन शून्यता विकसित हो रही है। परस्पर सामीप्य एवं आत्मीयता से गहराती संवेदनशून्यता की इस खाई को पाटना होगा, क्योंकि यह स्थिति विस्फोटक परिणाम भी ला सकती है। आज गुरु-शिष्य संबंध निस्स्वार्थ भाव से स्नेहसिक्त किए जाए तो मधुर और आत्मीयतापूर्ण संबंध पुनः विकसित किए जा सकते हैं।

गुरु-दक्षिणा

वैदिक शिक्षा में विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा ग्रहण करता था। गुरुकुल से विदा होते समय शिष्य गुरु को अपनी सामर्थ्यानुसार दक्षिणा देता था।

झूसी ग्राम से विदा होते समय उनके शिष्य 'धीसा' द्वारा अपना नया कुर्ता विक्रय कर महादेवी जी को भेंट देने हेतु तरबूज खरीदकर लाना, उनकी दृष्टि में किसी गुरु-दक्षिणा से कम नहीं था - "उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से ऐसी दक्षिणा मिली होगी ऐसा मुझे विश्वास नहीं। परंतु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक के सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।" (अतीत के चलचित्र, पृष्ठ 74)

शिष्य एवं शिक्षक के मध्य उत्पन्न संवेदनशून्यता की दुखद स्थिति की वेदना वे अनुभव करती थीं। जिसकी पृष्ठभूमि में निहित कारण को महादेवी जी ने इस रूप में उजागर किया - "आज के युग में विद्यार्थी उस प्रकार अपने गुरु का सानिध्य नहीं पाता, स्नेह और वात्सल्य नहीं पाता जैसा प्राचीन काल में पाता था।" (मेरे प्रिय संभाषण, पृष्ठ 20)

वास्तविकता यह भी है कि प्राचीन काल में ब्रह्मचारी अपना संपूर्ण समय गुरुकुल में गुरु के साथ रहकर व्यतीत करता व गुरु के पूर्ण नियंत्रण में रहता था। गुरु शिष्य में पिता-पुत्रतुल्य संबंध थे। महादेवी जी आज शिक्षकों से अपेक्षा करती हैं कि - "वे आपको इतना वात्सल्य दे कि उसमें आपके सारे अभाव भर जावें। इतना स्नेह दें इस पीढ़ी को, कि ये उसमें बंध जावें" (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 26)।

वर्तमान समय में भी महादेवी जी गुरुकुल प्रणाली के शिक्षक-शिष्य संबंध के आदर्श को पुनः स्थापित करने की आकांक्षिणी थीं। उनका विश्वास था कि यदि शिष्य पूर्णरूपेण गुरु के सामीप्य में समर्पण भाव से अपना कुछ समय व्यतीत करे तो वह प्राचीन आदर्श आज भी स्थापित किया जा सकता है ।

दीक्षांत अनुष्ठान

प्राचीन काल में गुरुकुल की शिक्षा ग्रहण कर विद्यार्थी उपाधि प्राप्त करने के अधिकारी होते थे। इस अवसर पर समावर्त्तन संस्कार किया जाता था। समावर्त्तन संस्कार के पश्चात विद्यार्थी गुरु की अनुमति से अपने घरों को वापिस जाते थे। महादेवी जी के अनुसार इस संस्कार के बाद गुरु की परीक्षा प्रारंभ होती थी - "तत्कालीन दीक्षांत अनुष्ठान ऐसी संधि-वेला थी जिसमें शिष्य की परीक्षा समाप्त, गुरु की परीक्षा का आरंभ होता था। स्नातक में गुरुकुल का ज्ञान ही नहीं, उसकी महिमा भी संक्रमित होती थी। इसी से स्नातक अपने आचार्य कुल से पहचाना जाता था (मेरे प्रिय संभाषण पृ. 9)।

इस संधिवेला (समावर्त्तन संस्कार) पर आचार्य शिष्य को उसके भावी कर्मक्षेत्र के लिए उपदेश एवं आशीर्वाद देता था, जिससे उसके भावी जीवन की दिशा निर्देशित होती थी। महादेवी जी ने भी विक्रम विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह के दीक्षांत भाषण में विद्यार्थियों को इस रूप में आशीर्वाद दिया - "अध्यापकों ने जो बन सका आपको योग्यता दी। अब आप अपना कर्मक्षेत्र बना सकते हैं। वह जो यज्ञ की ज्वाला हुआ करती थी, उसके प्रतीक रूप में आपके हृदय में हम वह ज्वाला जगा देना चाहते हैं, जो वास्तव में जीवन को गढ़ती है (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 20)।

इस दृष्टिकोण से शिक्षा की समाप्ति पर आज के दीक्षांत समारोह में अर्जित ज्ञान की ज्योति लेकर विद्यार्थी अपने कर्मक्षेत्र में प्रवेश करते हैं। कर्मक्षेत्र में उनकी सफलता, उनकी शिक्षा की सार्थकता निर्धारित करती है।

उपरोक्त विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि महादेवी जी के शिक्षा-संबंधी अमूल्य विचारों का उत्स भारतीय संस्कृति में निहित है। उनकी विचारधारा गहन चिंतन, मनन और अंतर्दृष्टि का ही प्रतिफल है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उनके ये विचार शिक्षा की शाश्वत उपादेयता को भी रेखांकित करते हैं। उनके शैक्षिक विचारों की महत्ता पर चिंतन कर यदि उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में समाविष्ट कर सकें तो एक उत्कृष्ट शैक्षिक परिवेश का निर्माण किया जा सकता है, शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक क्रांति लाई जा सकती है।

संदर्भ

वर्मा, महादेवी, 1943. *अतीत के चलचित्र*, भारती भण्डार, इलाहाबाद

महादेवी, 1976. *मेरे प्रिय संभाषण* (दीक्षांत भाषणों का संकलन), साहित्य भवन, इलाहाबाद

महादेवी, 1948. *शृंखला की कड़ियाँ*, भारती भण्डार, इलाहाबाद

कुमार, कृष्ण, 1977. *भारतीय संस्कृति के आधार तत्व*, प्रकाशन बुक डिपो, बरेली

लूनिया, बी.एन., लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 1977. *प्राचीन भारतीय संस्कृति*, पुस्तक प्रकाशन

शर्मा, सत्य प्रकाश, रतिराम शास्त्री, 1975. *प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता*, साहित्य भण्डार, मेरठ